लब्धिसार

अनुक्रमणिका

001) मंगलाचरण
002) जीव में प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की योग्यता बताते है
003) जीव के सम्यक्त्वोत्पत्ति से पूर्व मिथ्यात्व गुणस्थान में होने वाली पांच लब्धियां
004) क्षयोपशम लब्धि का स्वरुप
005) विशुद्धि लब्धि का स्वरूप
006) देशना लब्धि का स्वरुप
007) प्रायोग्य लब्धि का स्वरुप
008) प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता का प्रतिपादन
009) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुए जीव के स्थिति बंध योग्य परिणाम निम्न सूत्र में बताये गए है
010) प्रायोग्य-लब्धि काल में प्रकृति-बंधापसरण
011-015) चौतीस प्रकृति बन्धापसरणों (व्युच्छेद) का ५ गाथाओं में वर्णन
016-017-018) नर, तिर्यंच और देवगति में, रत्नादि ६ पृथिवियों और सनत्कुमार आदि दश कल्पों में और आनतकल्प आदि में बंधपसरणों के निर्देश -
019) सातवे नरकपृथिवी में बन्धापसरण
020) मनुष्य और तिर्यंचगति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा बध्यमान प्रकृतिया
021) अप्रमत्त गुणस्थान में बंधने वाली २८ प्रकृतियाँ
022) प्रथमोपशसम्यक्तव के अभिमुख देव और नारकी (छट्टी पृथिवी तक) द्वारा बढ़ी कर्म प्रकृतियाँ
023) सातवी पृथ्वी के नारकी द्वारा बंध प्रकृतियाँ
024) सम्यक्त्व के अभिमुख मिथिदृष्टि जीव के स्थिति-अनुभाग बंध के भेद
025) सम्यक्त्व के अभिमुख मिथिदृष्टि जीव के प्रदेशबंध के विभाग
027) उक्त तीन महादण्डकों में अपुनरुक्त प्रकृतियाँ
028) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के प्रकृति-स्थिति अनुभाग और प्रदेशों का उदय
029-030) प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के उदय प्रकृति संबंधी स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशों की उदय-उदीरणा का कथन
31) प्रकृतियों के सत्त्व का कथन
32) सत्त्व प्रकृतियों के स्थिति-अनुभाग और प्रदेश बंध
33) पंचम-करण लब्धि
34) तीनों करणों का काल अल्पबहुत्व सहित
35) प्रथम करण को अध:करण कहने का कारण
36) अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के स्वरुप का निरूपण
37) अध:प्रवृत्तकरण संबंधी विशेष (निम्न ५ गाथा) कथन
42) अध: प्रवृत्त करण संबंधी अनुकृष्टि एवं अल्पबहुत्व अनुयोग-द्वार

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!
श्रीमद्-नेमिचंद्र-आचार्यदेव-प्रणीत
श्री
लब्धिसार
मूल प्राकृत गाथा,
आभार :
!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-लाब्धिसार नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-भगवत्नेमिचंद्र-आचार्यदेव विरचितं ॥
॥ श्रोतार: सावधान-तया शृणवन्तु ॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

मंगलाचरण

सिद्धे जिणिंदचंदे आयरियन उवज्झाय साहुगणे
वंदिय सम्मद्दं सण-चरित्तलद्धिं परुवेमो ॥1॥
अन्वयार्थ : [सिद्धे] सिद्ध, [जिणिंदचंदे] चन्द्रमा के समान समस्त लोक को प्रकाशित करने वाले अरिहंत, [आयरियन] आचार्यों, [उवज्झाय] उपाध्याय और [साहुगणे] सब साधुओं को [वंदिय] नमस्कार कर [सम्मद्दं सण] सम्यग्दर्शन और [चरित्त] सम्यक्चारित्र की [लद्धिं] प्राप्ति के उपायों को मैं, नेमिचंद आचार्य, [परुवेमो] कहूँगा ।

जीव में प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की योग्यता बताते है

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागरो
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धि चरिमम्हि ॥2॥
अन्वयार्थ : [चदु] चारो [गदि] गतियों का [मिच्छो] मिथ्यदृष्टि, [सण्णी] संज्ञी, [पुण्णो] पर्याप्तक, [गब्भज] गर्भज, [विसुद्ध] मंद कषायी / विशुद्ध परिणामी, [सागरो] साकार ज्ञानोपयोगी [स] जीव, [पंचमवरलद्धि] पंचमलब्धि के [चरिमम्हि] अंत समय में, [पढमुवसमं] प्रथमोपशम सम्यक्त्व [गिण्हदि] ग्रहण करता है ।

जीव के सम्यक्त्वोत्पत्ति से पूर्व मिथ्यात्व गुणस्थान में होने वाली पांच लब्धियां

खयउवसमियविसोही, देसणापाउग्गकरणलद्धि य
चत्तारि वि सामण्णा, करणं सम्मत्तचारित्ते ॥3॥
अन्वयार्थ : [खयउवसमिय] क्षयोपशम, [विसोही] विशुद्धि, [देसणा] देशना, [पाउग्ग] प्रायोग्य और [करणलद्धि] करण, [य] ये पांच लब्धिया है [चत्तारि] जिनमे से आदि की चार [वि सामण्णा] सामान्य है किन्तु [करणं] करणलब्धि होने से [सम्मत्तचारित्ते] सम्यक्त्व / चारित्र अवश्य होता है ।

क्षयोपशम लब्धि का स्वरुप

कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धि दु ॥4॥
अन्वयार्थ : [कम्ममलपडल] कर्म-मल-पटल अर्थात अप्रशस्त ज्ञानवर्णीय आदि कर्मो के पटल समूह की [सत्ती] शक्ति (अनुभाग) की [कमा] क्रम से [पडिसमयमणंत] प्रतिसमय अनन्त [गुणविहीण] गुणी हीनता सहित जिस समय [होदूणुदीरदि] उदीरणा होती है [जदा] तब [तदा] उस समय [खओवसमलद्धि] क्षयोपशम लब्धि [दु] होती है ।

विशुद्धि लब्धि का स्वरूप

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपाहुदीणं
सत्थाणं पयडीणं बंधण जोगो विसुद्धलद्दी सो ॥5॥
अन्वयार्थ : [आदिम] प्रथम (क्षयोपशम) [लद्धि] लब्धि [भवो] होने पर, [सादपाहुदीणं] सातादि [सत्थाणं] प्रशस्त (पुण्य) [पयडीणं] प्रकृतियों के [बंधण] बंध [जोगो] योग्य [जीवस्स] जीव के [जो भावो] जो परिणाम होते है [सो] वह [विसुद्धलद्दी] विशुद्धिलब्धि है ।

देशना लब्धि का स्वरुप

छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्दी दु ॥6॥
अन्वयार्थ : [छ] छ: [द्दव्व] द्रव्य और [णव] नौ [पयत्थो] पदार्थों का [पदेसयरसूरिपहुदि] उपदेश देने वाले आचार्य आदि से अथवा [देसिद] उपदेशित [पदत्थ] पदार्थों को [धारण] धारण कर [लाहो] लाभान्वित [जो] होना, [वा] वह [तदियलद्दी] तृतिया लब्धि (देशना) है ।

प्रायोग्य लब्धि का स्वरुप

अंतोकोडकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं
पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा॥7॥
अन्वयार्थ : कर्मों की [ठिदि] स्थिति को [अंतो] अंत: [कोडकोडी] कोड़ाकोड़ी-सागर प्रमाण तथा उनका [रसाण] अनुभाग [विट्ठाणे] द्वि-स्थानिक [जं करणं] करने को [पाउग्गलद्धिणामा] प्रायोग्य लब्धि कहते है । यह [भव्वाभव्वेसु] भव्य और अभव्य के [सामण्णा] समान रूप से होती है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता का प्रतिपादन

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य
ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छ जीवो हु ॥8॥
अन्वयार्थ : [जेट्ठवरट्ठिदिबंधे] उत्कृष्ट/जघन्य स्थिति बंध करने वाले [च] तथा [तियाण] स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन तीनों का [जेट्ठवरट्ठिदि] उत्कृष्ट/जघन्य [सत्ते] सत्व [य] वाले [मिच्छ] मिथ्यादृष्टि [जीवो] जीवों के [पढमुवसमसम्मं] प्रथमोपशम सम्यक्त्व [ण] नही [पडिवज्जदि] उत्पन्न [हु] होता है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख हुए जीव के स्थिति बंध योग्य परिणाम निम्न सूत्र में बताये गए है

सम्मतहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु
अंतो कोडाकोडि सत्तण्हं बंधणं कुणई ॥9॥

अन्वयार्थ : [सम्मत] प्रथमोपशम सम्यक्त्व के [हिमुह] अभिमुख [मिच्छो] मिथ्यादृष्टि जीव, परिणामों में [वड्ढमाणो] प्रतिसमय वृद्धिंगत [विसोहि] विशुद्धता [वड्ढीहि] वर्धमान (बढ़ते) हुए [हु] करता है, [सत्तण्हं] वह (आयुकर्म के अतिरिक्त) सात (ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र और अंतराय) कर्मों का [अंतो] अंत: कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति [बंधणं] बंध [कुणई] करता है ।

प्रायोग्य-लब्धि काल में प्रकृति-बंधापसरण

तत्तो उदहिसदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय
बंधम्मि पयडिबन्धुच्छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥10॥

अन्वयार्थ : [तत्तो] उस (अंत:कोडाकोड़ी सागर स्थिति) [उदहि] उदय से पृथकत्व [सदस्स] सौ सागर हीन स्थिति को बंध कर [पुणोपुणो] पुन:पुन; [पुधत्त] पृथकत्व [मेत्तं] मात्र १०० सागर [उदरिय] उदीरणा (घटाते) करते हुए, [बंधम्मि] स्थितिबंध करने पर [पयडिबन्ध:] प्रकृति बंध [उच्छेद] व्युच्छति के [चोत्तीसा] चौतीस [पदा] स्थान [होंति] होते है ।

चौतीस प्रकृति बन्धापसरणों (व्युच्छेद) का ५ गाथाओं में वर्णन

आऊ पडि णिरयदुगे, सुहुमतिये सुहुमदोण्णि पत्तेयं
बादरजुत दोण्णि पदे, अपुण्णजुद बि ति चसण्णिसण्णीसु ॥11॥
अट्ठ-अपुण्णपदेसु वि,पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियेपदे
एइंद्रिय आदावं, थावरणामं च मिलिदव्वं ॥12॥
तिरिगदुगुज्जोवो वि य णीचे अपसत्थगमण दुभगतिय
हुंडासंपत्ते वि य णउंसए वाम-खिलीए ॥13॥
खुज्जद्धंणाराए, इत्थिवेदे य सादिणाराए
णाग्गोधवज्जणाराए, मणुओरालदुगवज्जे ॥14॥
अथिरअसुभजस-अरदी सोय-असादे य होंति चोतिसा
बंधोसरणट्ठाणा, भव्वा भव्वेसु सामाण्णा ॥15॥

अन्वयार्थ : [आऊ] आयुबंध व्युच्छित्ति स्थानों के पश्चात [पडि] क्रमश: [णिरयदुगे] नरक-द्विक (नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी), [सुहुमतिये] सूक्ष्म तीन (सूक्ष्म -- अपर्याप्त, साधारण, शरीर), [सुहुमदोण्णि] सूक्ष्म दो (सूक्ष्म -- अपर्याप्त, प्रत्येक), व [बादरजुत द्वि] (बादर -- अपर्याप्त, प्रत्येक), (बादर -- अपर्याप्त, साधारण) [पत्तेयं] प्रत्येक, अपर्याप्त [दोण्णिपदे] द्वीन्द्रिय, [अपुण्णजुद] अपर्याप्त सहित [बितिचसण्णि] त्रीन्द्रिय चतुरिंद्रिय अपर्याप्त [असण्णी] असंज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त [सण्णीसु] संज्ञी पंचेन्द्रिय ।
उपर्युक्त [अट्ठ] आठ [अपुण्ण] अपर्याप्त [पदेसु] पदों (६ से १३ में) [वि] के स्थान पर [पुण्णेण] पर्याप्त [जुदेसु] जैसे [तेसु] वैसे और [तुरिये] चौथे [पदे] पद में (**अर्थ**ात ९वे में) [एइंद्रिय] एकेन्द्रिय [आदावं] आतप [थावरणामं] स्थावर [च] भी [मिलिदव्वं] लगाना है ।
उसके बाद क्रम से, (संख्या २२ के) आयु से शत सागरोपम पृथकत्व नीचे - नीचे उतर कर संयोग-रूप [तिरिगदुगुज्जोवो] तिर्यञ्चद्विक -- तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी उद्योत का युगपत, [णीचे] नीच गोत्र [अपसत्थगमण] अप्रशस्त विहायोगगति, [दुभगतिय] दुर्भग -- दुःस्वर और अनादेय चार प्रकृतियों का युगपत, [हुंडासंपत्ते] हुंडक-संस्थान - सृपाटिका संहनन प्रकृतियों कस युगपत, [णउंसए] नपुंसक वेद प्रकृति [वि] की भी [य] तथा [वाम] वामन संस्थान व [खिलीए] कीलितसंहनन प्रकृति के व्युच्छिति प्राप्ति के क्रमशः २३, २४, २५, २६, २७ और २८वे स्थान है ।
उसके बाद (२८वे) स्थान की आयु से प्रत्येक स्थान से क्रमश: शतसागरोपम पृथकत्व नीचे-नीचे उत्तर कर [खुज्ज] कुब्जक संस्थान और

[द्धंणाराए] अर्द्धनाराच शरीर / संहनन (दो प्रकृतियों), [इत्थिवेदे] स्त्रीवेद् (१ प्रकृति), [सादि] स्वाति संस्थान और [णाराए] नाराचशरीर संहनन (३ प्रकृतियों), [णाग्गोध] न्योग्रोधपरिमंडलसंस्थान [य] और [दुग] दो-दो [वज्जणाराए] वज्रनाराचशरीरसंहनन (दो प्रकृतियों), [मणु] संयोग रूप मनुष्य गति / मनुष्यानुपूर्वी, [ओराल] औदारिक शरीर / औदारिक अंगोपांग और [वज्जे] वज्रऋषभनाराच शरीर संहनन (५ प्रकृतियों) के २९वे, ३०वे, ३१वे, ३२वे और ३३वे बंध व्युच्छिति के स्थान है ।

उपर्युक्त आयु (३३ वे स्थान) से सागरोपमशत पृथकत्व नीचे उतर कर [अथिर] अस्थिर [असुभजस] अशुभ, अयश:कीर्ति [अरदी] अरति, [सोय] शोक और [असादे] असातावेदनीय,छः प्रकृति का युगपत बंधव्युच्छेद [होंति] होता है । इस प्रकार [बंधोसरणट्ठाणा] बंध व्युच्छित्ति के कुल [चोतिसा] चौतीस [स्थाननी] स्थान है । ये [भव्वा] भव्य और [अभव्वेसु] अभव्य दोनों जीवों के [सामाण्णा] समान रूप है ।

नर, तिर्यंच और देवगति में, रत्नादि ६ पृथिवियों और सनत्कुमार आदि दश कल्पों में और आनतकल्प आदि में बंधपसरणों के निर्देश -

णर तिरियाणं ओघो भवणति-सोहम्मजुगलाए विदियं
तदीयं अट्ठारसमं तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं ॥16॥
ते चेव चोदस् पदा अट्ठार समेण हीणया होंति
रयणादिपुढविछक्के सणक्कुमरादिदसकप्पे ॥17॥
ते तेरस विदिएण य तेवीसदिमेण चावि परिहीणा
आणद कप्पादुवरिमगेवेज्जंतो त्ति ओसरणा ॥18॥

अन्वयार्थ : [णर] मनुष्य और [तिरियाणं] तिर्यंच गति में [ओघो] साधारण अर्थात ३४ बंधापसरण होते हैं । जिनके बंध योग्य ११७ प्रकृतियों में से, आदि के छ स्थान विषय ९; १८वे स्थान विषय ऐकेन्द्रिय-३; १९, २०, २१ वे संबंधी द्वी, त्रि, चतुर इन्द्रिय-३ प्रकृति और २३वें ३४वें तक १२ स्थान संबंधी ३१, कुल ४६ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है । शेष ७१ बंधने योग्य रहती है । [भवणति] भवनत्रिक और [सोहम्मजु] सौधर्म [जुगलाए] युगल में [विदियं] दूसरा, [तदीयं] तीसरा, [अट्ठारसमं] अठारहवां, [तेवीसदिमादि] तेईसवें को आदि लेकर ३२ वे तक [दसपदं] १० स्थानों तक तथा [चरिमं] अंतिम ३४वां कुल १४ बन्धापसरण होते हैं जिनमे ३१ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति हो जाती है ।

होते है।

[रयणादि] रत्नप्रभादि [छक्के] ६ [पुढ] पृथ्वियों के [वि] विषय में [ते] उपर्युक्त [अथण] कहे गए [चोदस्पदा] १४ प्रकृति बंध प्रसारणों में [अट्ठार] १८वें [परिहीणा] अतिरिक्त १३ स्थान होते है जिसमे २८ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है । वहां बंध योग्य सौ में से ७२ का ही बंध शेष रहता है।

[आणद] आनत [कप्पा] कल्प से लेकर उपरिम ९वे [गेवेज्जंतो] गैवियक [दुवरिम] पर्यंत उपर्युक्त [तेरस] तेरह पृकृति बंध [ओसरणा] पसरणों स्थानों में से [विदिएण] दूसरा [य] और [तेवीसदिमेण] २३वा बन्धापसरण नही होता शेष ११ बन्धापसरण [त्ति] होते है। इनमे २४ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ।

सातवे नरकपृथिवी में बन्धापसरण

ते चेवेक्कार पदा तदिऊणा विदियठाणसंपत्ता
चउवीसदि मेणू णा सत्तमिपुढविम्हि ओसरणा ॥19॥

अन्वयार्थ : सातवी पृथ्वी में, [ते] गाथा १८ में [चेवेक्कार] उल्लेखित ११ [पदा] बन्धापसरण में से [चउवीसदिमेणू] चौबीसवाँ बन्धापसरण [णा] नही होता, किन्तु [विदिय] दूसरा [ठाण] स्थान / बन्धापसरण [संपत्ता] होता है । इस प्रकार [सत्त] सातवी [मिपुढविम्हि] पृथ्वी केवल १० [ओसरणा] बन्धापसरण होते हैं ।

मनुष्य और तिर्यंचगति में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीव के द्वारा बध्यमान प्रकृतिया

घादिति सादं मिच्छं कसायपुं हस्सरदि भयस्स दुगं
अपमत्तडवीसच्चं बंधंती विसुद्धणरतिरिया ॥20॥

अन्वयार्थ : [विसुद्ध] विशुद्ध [णर] मनुष्य और [तिरिया] तिर्यंच; मिथ्यादृष्ट, गर्भज, संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख प्रायोग्यलब्धि में स्थित, जिसने ३४ बंध पसरणो में ४६ प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति कर दी है),; [घादिति] तीन घातिया कर्मों -- (५ ज्ञानावरण -- मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल ज्ञान वरण ; ९ दर्शनावरण -- चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शना वरण, स्त्यानगृद्ध, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला; ५ अंतराय -- दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य); [सादं] सातावेदनीय, [मिच्छं] मिथ्यात्व, [कसाय] १६ कषाय (अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्यानाख्यानावरण और संज्ज्वलन - क्रोध, मान, माया, लोभ), [पुं] पुरुषवेद, [हस्सरदि] हास्य, रति, [भयस्स दुगं] भय, जुगुप्सा; [अपमत्तडवीस] अप्रमत्तगुणस्थान संबंधी-२८, [उच्च] उच्च गोत्र, इस प्रकार कुल ७१ प्रकृतियों का [बंधंती] बंध करते है । (ध.पु.६,पृ. १३३-१३४;ज.ध.पु. १२ पृ २११,२२५-२२६)

अप्रमत्त गुणस्थान में बंधने वाली २८ प्रकृतियाँ

देव-तस वण्ण-अगरुचउक्कं समचउरतेजकम्मइं
सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ॥21॥

अन्वयार्थ : [देव] देव [चउक्कं] चतुष्क (देवगति,देवगत्यानुपूर्वी,वैक्रयिकशरीर,वैक्रयिकशरीरअंगोपांग), [तस] त्रस [चउक्कं] चतुष्क(त्रस,बादर,पर्याप्त, प्रत्येकशरीर), [वण्ण] वर्ण [चउक्कं] चतुष्क(वर्ण,गंध,रस ,स्पर्श), [अगरु] अगुरुलघु [चउक्कं] चतुष्क (अगुरुलघु,उपघात,परघात,उच्छ्वास), [समचउर] समचतुरस्र-संस्थान, [तेज] तेजस, [कम्मइं] कार्माण-१, [सग्गमणं] शुभ विहायोगति, [पंचिंदी] पंचेन्द्रिय, [थिरादिछ] स्थिरादि (स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति) छः-६ और [ण्णिमिण] निर्माण, अप्रमत्तगुण स्थान संबंधी [मडवीसं] २८ कर्म प्रकृतियाँ अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी बंधने वाली है ।

प्रथमोपशसम्यक्तव के अभिमुख देव और नारकी (छट्टी पृथिवी तक) द्वारा बढ़ी कर्म प्रकृतियाँ

तं सुरचउक्कहीणं णरचउवज्जजुद पयडिपरिमाणं
सुरछप्पुढवीमिच्छा सिद्धोसरणा हु बंधति ॥22॥

अन्वयार्थ : [तं] उन,उक्त ७१ प्रकृतियों में से [सुर] देव [चउक्क] चतुष्क (देवगति,देवगत्यानुपूर्वी,वैक्रयिकशरीर और वैकिरियिकअंगोपांग) [हीणं] को कम करके [णर] मनुष्य [चउ] चतुष्क (मनुष्य गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदरिक्शरीर और, औदारिक अंगोपांग) तथा [वज्ज] वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन को [जुद] मिलाने से, [सिद्धोसरणा] बन्धापसरण [हु] करने के पश्चात, [मिच्छा] मिथ्यादृष्टि [सुर] देव और [छप्पुढवी] छटी पृथ्वी तक के [मिच्छा] मिथ्यादृष्टि नारकी, [परिमाणं] कुल ७२ [यडिप] प्रकृतियों का [बंधति] बंध करते है।

सातवी पृथ्वी के नारकी द्वारा बंध प्रकृतियाँ

तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदु णीच जुद पयडिपरिमाणं
उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधंति ॥23॥

अन्वयार्थ : प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख सातवी पृथ्वी का नारकी, [तं] पूर्वाक्त ७२ प्रकृतियों में से [णर] मनुष्य [दुगुच्च] द्विक; मनुष्यगति और मनुषगत्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्र को [हीणं] कम करने से तथा [तिरियदु] तिर्यंचगति [द्विक] द्विक ;तिर्यंच गति और तिर्यंचगत्यानुपूर्वी तथा [णीच] नीच गोत्र को [जुद] मिलाने से [पयडिपरिमाणं] ७२ प्रकृतियाँ का बंध करता है । यदि [उज्जोवेण] उद्योत प्रकृति [जुदं] मिलाई जाती है तो सातवी पृथ्वी का नारकी [सत्तमखिदिगा] ७३ प्रकृति का [हु] ही [बंधंति] बंध करते है ।

सम्यक्त्व के अभिमुख मिथिदृष्टि जीव के स्थिति-अनुभाग बंध के भेद

अंतों कोडाकोड़ीठिदिं अस्तथाणं सत्थगाणं च
बिचउठाणरसं च य बंधाणं बंधणं कुणदि ॥24॥

अन्वयार्थ : (प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्यादृष्टि) बंधने योग्य कर्म प्रकृतियों का [अंतों] अंत: [कोडाकोड़ी] कोटाकोटिसागरोपम प्रमाण ही [ठिदिं] स्थिति-बंध [कुणदि] करता क्योकि वह विशुद्धतर परिणामों से युक्त होता है ,उससे अधिक स्थितिबंध असम्भव है तथा [अस्तथाणं] अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों का [बि] द्वि [ठाण] स्थानीय अनंत अनंत गुणा घटते हुए [च] और [सत्थगाणं] प्रशस्त प्रकृतियों का [चउ] चतु: [ठाण] स्थानीय [रसं] अनुभाग [बंधणं] बंध प्रति समय अनंत अनंत गुणा वृद्धिंगत बांधता है।

सम्यक्त्व के अभिमुख मिथिदृष्टि जीव के प्रदेशबंध के विभाग

मिच्छणथीणति सुरचउ समवज्जपसत्थ गमण सुभगतीयं

णीचुक्कस्सपदेसमणुक्कस्सं वा पबंधदि हु ॥25॥

अन्वयार्थ : [प] प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख [मिच्छ] मिथ्यात्व / अन्नतानुबन्धी चतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ), [णथीण] स्तयानगृद्धादि-त्रिक (निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला , स्तयानगृद्ध), [सुरचउ] देव-चतुष्क (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रयिक-अंगोपांग), [सम] समचतुरस्र-संस्थान, [वज्ज] वज्रवृषभनाराच-संहनन, [पसत्थ] प्रशस्त [गमण] विहायोगगति, [सुभगतीयं] सुभगादितीन (सुभग, सुस्वर, आदेय), [णीच] नीच गोत्र, इन १९ कर्म प्रकृतियों का [उक्कस्स] उत्कृष्ट [वा] और [अणुक्कस्सं] अनुत्कृष्ट [पदेसं] प्रदेश [बंधदि] बंध [हु] करते हैं ।

एदेहिं विहीणाणं तिण्णि महादंडएसु उत्ताणं

एकट्ठिपमाणाणमणुक्कस्सपदेसंबंधणं कुणदि ॥26॥

अन्वयार्थ : [एदेहिं] गाथा २५ में कही १९ कर्म प्रकृतियों [विहीणाणं] से रहित [तिण्णि] तीन [महादंडएसु] महादण्डक अर्थात २१, २२, २३ शेष [एकट्ठि पमाणाणं] ६१ प्रकृतियों का [अणुक्कस्स] अनुत्कृष्ट [पदेसं] प्रदेश [बंधणं] बंध [कुणदि] करते हैं ।

उक्त तीन महादण्डकों में अपुनरुक्त प्रकृतियाँ

पढमे सव्वे विदिये पण तिदिये चउ कमा अपुणरुत्ता

इदि पयडीणमसीदी तिदंडएसु वि अपुणरुत्ता ॥27॥

अन्वयार्थ : [पढमे] प्रथम की [सव्वे] सभी, [विदिये] द्वितीय की [पण] पांच और [तिदिये] तृतीय की [चउ] ४ प्रकृति [कमा] क्रमश: [अपुणरुत्ता] अपुनरुक्त है, [इदि] ये [तिदंड] तीन दण्डक [एसु] संबंधी ८० [पयडी] प्रकृतियाँ [अपुणरुत्ता] अपुनरुक्त है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के प्रकृति-स्थिति अनुभाग और प्रदेशों का उदय

उदये चउदसघादी णिद्दापयलाणमेक्कदरंग तु

मोहे दस सिय णामे वचिठाणं सेसगे सजोगेक्कं ॥28॥

अन्वयार्थ : तीन [घादी] घातिया-कर्मों की (ज्ञानावरण-५,दर्शनावरण-४,अंतराय-५) [चउदस] चौदह प्रकृतियों, [णिद्दा] निद्रा और [पयलाणमें] प्रचला में से [क्कदरंग] किसी एक, [मोहे] मोहनीयकर्म की [सिय] स्यात् [दस] १० (१०/९/८) प्रकृतियों, [णामे] नाम-कर्म की [वचिठाणं] भाषा पर्याप्ति काल में उदय योग्य प्रकृतियां और [सेसगे] शेष (वेदनीय,गोत्र,और आयुकर्म)की [क्कं] एक-एक प्रकृति [सजोगे] मिला लेने चाहिए । ये सर्व प्रकृतियाँ [उदये] उदय योग्य हैं ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध मिथ्यादृष्टि के उदय प्रकृति संबंधी स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशों की उदय-उदीरणा का कथन

उद इल्लाणं उदये पत्तेक्कठिदिस्स वेदगो होदि

विचउट्ठाणमसत्थे सत्थे उदयल्लरसभुत्ती ॥29॥

अजहण्णमणुक्कस्स्पदेसमणुभवदि सोदयाणं तु

उद्यिल्लाणं पयडिचउक्काणमुदीरगो होदि ॥30॥

अन्वयार्थ : [उदइल्लाणं] उदयवान प्रकृतियों का [उदये] उदय प्राप्त होने पर [पत्तेक्कठिदिस्स] एक स्थिति का [वेदगो] वेदक [होदि]

होता है । [असत्थे] अप्रशस्त प्रकृतियों के [विच] द्वि [उट्ठाणं] स्थानरूप और [सत्थे] प्रशस्त प्रकृतियों कर [चतु:] चतु:स्थानरूप उदयमान [रस] अनुभाग को [भुत्ती] भोगता है ।

[उदयल्ल] उदरूप प्रकृतियों के [अजहण्णम] अजघन्य [णुक्कस्स्पदेसम] अनुत्कृष्ट प्रदेशों को [णुभवदि] अनुभव करता है । [उद्विल्लाणं] उदयस्वरूप [पयडि] प्रकृतियों के [चउक्काणं] प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभाग का [उदीरगो] उदीरणा [होदि] करता है ।

प्रकृतियों के सत्त्व का कथन

दुति आउ तित्थहारचाउक्कणा सम्मेगण हीणा
मिस्सेणूना वा वि य सव्वे पयडी हवे सत्तं ॥31॥

अन्वयार्थ : [दु] दो, या [ति] तीन [आउ] आयु, [तित्थ] तीर्थंकर और [हार] आहारक [चाउक्कणा] चतुष्क; [सम्मेगण] सम्यक्त्व [वा] तथा [मिस्सेणूना] सम्यकमिथ्यात्व प्रकृतियों के [हीणा] अतिरिक्त [सव्वे] सब [पयडी] प्रकृतियों का [सत्तं] सत्त्व [हवे] रहता है ।

सत्त्व प्रकृतियों के स्थिति-अनुभाग और प्रदेश बंध

अजहण्णमणुक्कस्सं ठिदितियं होदि सत्तपयडीणं
एवं पयडिचउक्कं बंघादिसु होदि पत्तेयं ॥32॥

अन्वयार्थ : [सत्तपयडीणं] उक्त सत्त्व प्रकृतियों का [ठिदितियं] स्थितित्रिक (स्थिति,अनुभाग और प्रदेश) [अजहण्णमणुक्कस्सं] अजघन्य-अनुत्कृष्ट [होदि] होता है । [बंघादिसु] बन्धादि (बंध-उदय-उदीरणा) [पत्तेयं] प्रत्येक में इसी प्रकार [पयडिचउक्कं] प्रकृति चतुष्क (प्रकृति,स्थिति,अनुभाग और प्रदेश) [होदि] होता है।

पंचम-करण लब्धि

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं बोलिऊण भव्वो हू
करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं ॥33॥

अन्वयार्थ : [तत्तो] उस अर्थात प्रायोग्य लब्धि के बाद [अभव्वजोग्गं] अभव्य योग्य [परिणामं] परिणामों का [बोलिऊण] उल्लंघन कर (मुक्त होकर) [भव्वो] भव्य जीव [हू] ही अधिक वृद्धिगत विशुद्ध परिणामों के द्वारा [करणं] करण लब्धि को जो [कमसो] क्रमशः [अधापवत्तं] अध:प्रवृत्त करण, [अपुव्वमणियट्टिं] अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण [करेदि] प्राप्त करता है ।

तीनों करणों का काल अल्पबहुत्व सहित

अंतोमुहुत्तकाला तिण्णिवि करणा हवंति पत्तेयं
उवरीदो गुणियकमा कमेण संखेज्जरूवेण ॥34॥

अन्वयार्थ : [तिण्णिवि] तीनों [करणा] करणों में [पत्तेयं] प्रत्येक का [अंतोमुहुत्तकाला] अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल [हवंति] होता है । किन्तु [उवरीदो] ऊपर से नीचे करणों का काल [संखेज्जरूवेण] संख्यात गुणा [गुणियकमा कमेण] क्रम लिए हुए है ।

प्रथम करण को अध:करण कहने का कारण

जम्हा हेट्ठीमभावा उवरिम भावेहिं सरिसगा होंति
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोति णिद्दिट्ठं ॥35॥

अन्वयार्थ : [जम्हा] क्योंकि [हेट्ठीमभावा] अधस्तन अर्थात नीचे के भाव [उवरिम] उपरितन [भावेहिं] भावों के [सरिसगा] सदृश [होंति] होते है [तम्हा] इसलिए [पढमं] प्रथम [करणं] करण को [अधापवत्तोत] अध:प्रवृत्तकरण [णिद्दिट्ठं] कहा गया है ।

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के स्वरुप का निरूपण

समय समय भिण्णा भावा तम्हा अपुव्व करणो दु

अणियट्टीवि तहं वि य पडिसमयं एक्कपरिणामो ॥36॥

अन्वयार्थ : [समय समय] प्रति समय [भिण्णा] भिन्न [भावा] भाव होते हैं [तम्हा] इसलिए [अपुव्व करणो] अपूर्वकरण [दु] है [य] तथा [पडि समय] प्रति समय [एक्कपरिणामो] एक समान परिणाम होते है [वि] वह [अणियट्टीवि] अनिवृत्तिकरण है

अध:प्रवृत्तकरण संबंधी विशेष (निम्न ५ गाथा) कथन

गुणसेढी गुणसकम ठिदिरसखंडं च णत्थि पढमम्हि

पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढिहिं वड्ढदि हु ॥37॥

अन्वयार्थ : [पढमम्हि] प्रथम; अध:करण में [गुणसेढी] गुणश्रेणि, [गुणसकम] गुणसंक्रमण, [ठिदि] स्थिति [खंडं] खण्ड [च] और [रस] अनुभागखण्ड [णत्थि] नहीं होते, किन्तु [पडि] प्रति [समयम्] समय परिणामों में [अणंतगुणं] अनंतगुणी [वड्ढिहिं] वृद्धिंगत [विसोहि] विशुद्धि [वड्ढदि] बढती [हि] है ।

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणंरसं च बंधदि हु

पडिसमयणंतेण य गुणभजियक्मं तु रसबंधे ॥38॥

अन्वयार्थ : [सत्थाणमसत्थाणं] प्रशस्त (सातादि) प्रकृतिओं का प्रति समय अनंत गुणा [चउ] चतुः [ट्ठाणं] स्थानरूप (गुड़ ,खांड,शर्करा और अमृत) [रसं] अनुभाग [बंधदि] बंध होता [हि] है [च] और अप्रशस्त (असातादि) प्रकृतियों का [पडि] प्रति [समयणंतेण] समय अनंतवे [गुणभज] भाग मात्र [वि] द्वी स्थानीय [क्मं] क्रम से (लता-दारु अथवा निब-कांजीर) [रसबंधे] अनुभाग बंध होता है ।

पल्लस्स संखभागं मुहूत्तअंतेण ओसरदि बंधे ॥

संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा ॥39॥

अन्वयार्थ : अध:करण के प्रथम समय से, [मुहूत्तअंतेण] अन्तर्मुर्हूत अंतराल से [पल्लस्स] पल्य का [संखभागं] संख्यात्वां भाग [ओसरदि] घटता हुआ [बंधे] स्थिति-बंध होता रहता है । [य अधापवत्तम्मि] अध:प्रवृत्त करण काल में [संखेज्जसहस्साणि] संख्यात हज़ार [ओसरणा] स्थिति-बन्धापसरण होते रहते हैं ।

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि

संखेज्जगुणविहीणो ट्ठिदिबंधो होइ णियमेण ॥40॥

अन्वयार्थ : [आदिमकरणद्धाए] अध:प्रवृत्तकरण काल के आदि में जो [पढम] प्रथम [ट्ठिदिबंधदो] स्थिति-बंध होता है, [दु] तथा उससे [चरिमम्हि] अंत में [म्हि] होना वाला [ट्ठिदिबंधो] स्थिति बंध [णियमेण] नियम से [संखेज्जगुणविहीणो] संख्यातगुणाहीन होता है ।

तच्चरिमे ठिदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं

पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ॥41॥

अन्वयार्थ : [तच्चरिमे] इस चरम [ठिदिबंधो] स्थिति बंध से [देससयलजमं] देश / सकल संयम सहित [आदिमसम्मेण] प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले जीव के स्थिति बंध [संखेज्जगुणेण] संख्यात गुणा [हीण] हीन होता है ।

अध: प्रवृत्त करण संबंधी अनुकृष्टि एवं अल्पबहुत्व अनुयोग-द्वार

आदिमकरणद्धाए पडिसमयमसंलेखलोगपरिणामा

अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ॥42॥

अन्वयार्थ : [आदिमकरणद्धाए] आदि (अध:प्रवृत्त) करण के काल में, [पडिसमयम] प्रतिसमय [अहिय] अधिक [कमा] क्रम [हु] लिए हुए [असंलेखलोग] असंख्यात लोक प्रमाण [परिणामा] परिणाम होते है । [विसेसे] विशेष (चय) को प्राप्त करने के लिए, [मुहुत्तअंतो] अन्तर्मुहूर्त प्रमाण [पडिभागो] प्रतिभाग [हु] है ।

ताए अधा पवत्तद्धाय संखेज्जभागमेत्तं तु

अणुकट्टीए अद्धा णिव्वग्गणकंडयं तं तु ॥43॥

अन्वयार्थ : [ताए] उस [अधा] अध: [पवत्तद्धाय] प्रवृत्तकरण के काल (समयों) का [संखेज्जभागमेत्तं] संख्यात्वा भाग प्रमाण

[अणुकट्टीए] अनुकृष्ट रचना का [अद्धा] आयाम [तु] है, [तंतु]जितने समय का वह [अद्धा] आयाम है उतने समय का एक [णिव्वग्गणकंडयं] निर्वर्गणाकाण्डक होता है ।

पडिसमयगपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तंखंडकमा

अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो ॥44॥

अन्वयार्थ : [णिव्वग्गण] निर्वर्गणा काण्ड के [समयमेत्तं] समय मात्र के समान [पडिसमयग] प्रति समय के [परिणामा] परिणामों के [कमा] क्रमश: खंड [अहियकमा] अधिक क्रम वाले [हु] होते है । यहां [विसेसे] विशेष को प्राप्त करने का [पडिभागो] प्रतिभाग [मुहुत्तअंतो] अन्तर्मुहूत प्रमाण काल [हु] है ।